संदर्भ ग्रन्थ :

1. ठाणं : 2.1.1
2. आचाराङ्ग : 15
3. सूत्रकृताङ्ग : 2.5
4. आचाराङ्ग :1.6.6
5. आचाराङ्ग : 1.3
6. आचाराङ्ग : 1.4
7. केशव मिश्र : तर्क भाषा, पृ. 148
8. सांख्य कारिका : 19–20
9. स्याद्वाद मंजरी, श्लोक 18
10. सांख्य कारिका : 17
11. आचाराङ्ग : 1.2.12
12. ब्रह्म सूत्र : शांकर भाष्य : 3.2.18
13. आचाराङ्ग : 1.2.13
14. आचाराङ्ग : 1.3.21
15. आचाराङ्ग : 1.4.29
16. आचाराङ्ग : 1.7.60–61
17. आचाराङ्ग : 1.5.42–44
18. आचाराङ्ग : 1.2.16
19. श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. 346
20. आचाराङ्ग : 1.3.25
21. आचाराङ्ग : 1.1.14
22. भगवती : शतक 6
23. आचाराङ्ग : 1.5.45
24. षड्दर्शन समुच्चय श्लोक 47–48
25. समराइच्च कहा, तइओ भव, पत्राांक 171
26. षड्दर्शन समुच्चय श्लोक 47–48

भगवान् महावीर का तप साधना

डॉ. देवाश्रय प्रसाद सिंह*

श्रमण भगवान् महावीर ने साढ़े बारह वर्षों तक अपने आत्मा की दिव्य साधना की। सुख, समृद्धि व वैभवगत आसक्तियों को त्याग कर अकिंचिन बन से सत्य की साधना में निरन्तर लीन रहे। उनका दिव्य एवं भव्य संयमी जीवन साधनामय जीवन का उत्कृष्टम उदाहरण है। इस जीवन का प्रत्येक पृष्ठ समता, सहिष्णुता, परदुःखकातरता, त्याग, तपस्या, ध्यान और अभय की भावना से ओत–प्रोत था। उन्होंने यह दीर्घ साधना–काल मौन आत्म–चिन्तन, आत्म–पर्यालोचन, उग्र ध्यान एवं उत्कट संयम की आराधना में व्यतीत किया।

इस साधना–काल में उन पर अनेक विपत्तियाँ एवं उपसर्ग आये। प्राकृतिक, मानवीय व दैवी संकटों के प्राणघातक तूफान प्रलयकाल की तरह घिर–घिर कर आये पर वर्द्धमान में अदम्य साहस, अपराजेय संकल्प व आत्म–बल के सहारे उनका हट कर मुकाबला किया। उन्होंने अपूर्व कष्ट–सहिष्णुता, क्षमा और तितिक्षा का आदर्श उपस्थित किया। त्याग और तपस्या की साधना का इस प्रकार का आदर्श मानव–समाज में और मिलना दुर्लभ है। उनके सम्बन्ध में शास्त्रों में कहा है– ''उग्गं च चवोकम्मं विसेसओ वद्धमाणस्स''[1] अर्थात् अन्य तीर्थङ्करों की अपेक्षा वर्द्धमानप का तप विशेष उग्र था।

उनके साधना–काल का रोमांचकारी वर्णन आचारांगसूत्र[2], प्रथम श्रुतस्कन्ध के नवम अध्याय में मिलता है। गणधर सुधर्मा स्वामी ने उनकी साढ़े बारह वर्ष की साधनाचर्या का बड़ा सजीव, रसप्रद और हृदयस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है। इसके प्रत्येक पृष्ठ पर उनकी कष्ट–सहिष्णुता, अडिग ब्रह्मचर्य–साधना, अहिंसा और त्याग के कठिन नियमों का परिपालन, अनुकूल–प्रतिकूल सभी परिस्थितियों में समभाव, निःस्पृहता, शारीरिक अनासक्ति, विचन ध्यान, योग और अन्तर्लीनता मुखरित है। उस साधनाचार्य का कुछ अंश यहाँ पर प्रस्तुत है।

अचेलक अणगार – दीक्षा लेने के समय महावीर के शरीर पर एक श्वेत वस्त्र (देव दूष्य) था। तेरह महीनों के बाद अचेल परिषह के आमन्त्रण रूप में उन्होंने उसे भी त्याग दिया। सर्दी, गर्मी एवं वर्षा के सभी कष्टों को उन्होंने सहन किया। भयंकर सर्दी में भी खुले ही ध्यान करते थे।

***व्याख्याता, प्राकृत विभाग, वर्द्धमान महावीर कॉलेज, पावपुरी, नालन्दा**

अनिकेत–चर्या – महावीर कभी निर्जन झोपड़ी, धर्मशाला, प्याऊ, लुहार की शाला में रहते, कभी मालियों के घरों में, कभी शहर में, कभी श्मशन में रहते तो कभी उद्यान या सूने घर में या वृक्ष के नीचे रात्रि बिताते। ऐसे स्थानों पर रहे हुए वर्द्धमान को नाना प्रकार के उपसर्गों का सामना रना पड़ा। सर्प आदि जीव–जन्तु उन्हें डस जाते, गिद्ध जैसे पक्षी उन्हें काट खाते। दुराचारी मनुष्य उन्हें यातना देते, दुराचारिणी स्त्रियां उन्हें काम–भागों के लिए सताती। जार पुरुष उन्हें मारते, पीटते पर वे समाधि में ही तल्लीन रहते तथा वहाँ से चले जाने को कहने पर अन्यत्र चले जाते।

साधना काल का आहार – उनके भोजन के नियम बड़े कठोर थे। निरोग होते हुए भी वे मिताहारी तथा खान–पान में संयमी थे। मान–अपमान में समभाव रखते हुए वे भिक्षाचार्य करते तथा कभी दीनभाव नहीं दिखाते थे। भिक्षा में रूखा–सूखा, ठण्ड–बासी व नीरस जो भी आहार मिलता, वे शान्तभाव से सन्तोष के साथ ग्रहण करते। मात्र शरीर निर्वाह के लिए सूखे भात, मूंग, उड़द का आहार करते। एक बार निरन्तर आठ मास तक वे इसी प्रकार का नीरस आहार करते रहे। रसों में उन्होंने कभी आसक्ति नहीं दिखाई।

देहासक्ति का त्याग – शरीर के प्रति वर्द्धमान की अनासक्ता रोमांचकारी थी। रोग उत्पन्न होने पर भी वे औषधि–सेवन की इच्छा नहीं करते थे। उन्होंने शरीर के विश्राम की कभी आकांक्षा नहीं की। वे दैहिक वासना से सर्वथा मुक्त थे।

निद्रा–विजय – श्रमण वर्द्धमान ने कभी पूरी नींद नहीं ली। जब अधिक नींद सताती तो वे शीत में बाहर निकल थोड़ा घूमकर निद्रा दूर करते। हमेशा सहज–जागृत रहने की चेष्टा करते। वे प्रहर–प्रहर किसी लक्ष्य पर आंखे टिका कर ध्यान करते थे।

अनासक्ति – वे गृहस्थों के साथ कोई संसर्ग नहीं रखते थे, न ही गृहस्थों के गान, नृत्य या संगीत आदि में कोई रुचि रखते थे। ध्यानावस्था में कुछ पूछने पर भी उत्तर नहीं देते थे। वे स्त्री–कथा, भक्त–कथा, राज–कथा तथा देश–कथा में कोई रुचि नहीं लेते थे। यदि शून्य स्थानों में कोई उनसे पूछता कि आप कौन है तो वे संक्षिप्त उत्तर देते– ''अहमंसि ति भिक्खू'' अर्थात् मैं भिक्षु हूँ।[3] न सहन किये जा सके, ऐसे कटु व्यंग्य वचन, निन्दा व तिरस्कार का भी वे उत्तर नहीं देते थे तथा मौन रहते थे। वे हमेशा निर्विकार, कषाय–रहित, निर्मल ध्यान और आत्म–चिन्तन में समय बिताते थे।

अहिंसा एवं तितिक्षा – भगवान् ने पल–पल अनुपम अहिंसा और तितिक्षा की साधना की। भिक्षा में जाते हुए अगर कबूतर आदि पक्षी अनाज चुगते दिखाई देते तो वर्द्धमान दूर हट जाते ताकि उनको विध्न न पहुँचे। यदि वे किसी घर के

बाहर किसी ब्राह्मण, श्रमण या भिक्षुक को याचना करते देखते, तो उस घर में नहीं जाते थे ताकि उनकी आजीविका में बाधा पहुँचे। किसी के मन में द्वेष–भाव उत्पन्न होने का वे अवसर ही नहीं देते थे।

दुर्गम विहार–चर्या – भगवान् ने दुर्गम लाढ़ देश की व्रजभूमि और शुभ्र भूमि दोनों में विहार किया। वहाँ उन पर अनेक विपदाएँ आयीं। वहाँ के लोग उन्हें ताड़ित करते–पीटते। उन्हें खाने को रुखा–सुखा आहार मिलता। कुत्ते उन्हें चारों ओर से घेर लेते तथा कष्ट देते। उन अवसरों पर ऐसे लोग विरले ही होते, जो कुत्तों से उनकी रक्षा करते। अधिकांश तो उलटे भगवान् को ही पीटते तथा ऊपर से कुत्ते लगा देते। ऐसे अवसरां पर भी अन्य साधुओं की तरह उन्होंने दण्ड–प्रयोग नहीं किया। दुष्ट लोगों के दुर्वचनों को उन्होंने क्षमा भाव से सहन किया।

अनुपम चिन्तन, अनुपम तप, अनुपम ध्यान, तितिक्षा, धैर्य आदि के साथ महावीर ने अपना साढ़े बारह वर्षों का साधना–काल व्यतीत किया। उनकी उग्र तपस्या तथा कष्ट–सहिष्णता के कारण ही लोगों ने उन्हें श्रमण महावीर कहना प्रारम्भ किया।

साधना काल के उपसर्ग – श्रमण वर्द्धमान ने अपने दीर्घ साधना–काल में सारा समय आत्म–चिन्तन तथा आत्म–साक्षात्कार प्राप्त करने के उद्यम में बिताया। उन्होंने इस साधना काल में उपदेश नहीं दिया, धर्म–प्रचार नहीं किया, न शिष्य मुण्डित किये तथा न ही उपासक बनाये। उन्होंने ध्यान की अतल गहराइयों में डूबकर जगत् और जीवन के प्रत्येक प्रश्न पर गम्भीरता से चिन्तन किया।[5]

वर्द्धमान को कभी–कभी किन्हीं स्थानों पर ठहरने व ध्यान करने की अनुमति नहीं मिलती थी, किन्हीं–किन्हीं गांवों में वे जाते तो उन्हें तुरन्त वापस जाने को कह दिया जाता था। अतः उन्होंने निम्नलिखित नियम लिये–

भविष्य में अप्रीतिकारक स्थान पर नहीं रहूँगा।
ध्यान में सतत् लीन रहूँगा।
सदा मौन रक्खूँगा।
हाथ से ग्रहण करके भोजन करूँगा।
गृहस्थ का विनय नहीं करूँगा।

साधना–काल में उनके जीवन का जो उपसर्ग आए, उनका कुछ विवरण यहाँ प्रस्तुत है–

अभय की उत्कृष्ट साधना – श्रमण–वर्द्धमान विहार करते हुए एक छोटे से गाँव ''अस्थिक ग्राम'' में आये। वहाँ आस–पास का वातावरण बड़ा ही भयावह एवं हृदय को कंपा देने वाला था। गाँव के बाहर शूलपाणि यक्ष का मन्दिर था। एकान्त स्थान देखकर भगवान् ने गाँव वालों से वहाँ ठहरने की अनुमति माँगी।

महावीर की दिव्य, सौम्य आकृति को देखकर लोगों के हृदय द्रवित हो गए। उन्होंने कहा– ''देव! आप अन्यत्र ठहर जायें। यहाँ एक यक्ष रहता है जो बड़ा क्रूर है। रात में किसी को यहाँ ठहरने नहीं देता। उसे भयंकर यातना देकर मार डालता है।'' महावीर यह सुनकर भी डरे नहीं और उन्होंने वहाँ ठहरने का संकल्प किया तथा पुनः आज्ञा मांगी।

गाँव वालों की अनुमति लेकर वहीं एकान्त स्थान देखकर ध्यानमग्न हो गए। अर्द्ध रात्रि को यक्ष उस स्थान पर आया तथा एक मनुष्य को निर्भय खड़ा देखकर आग बबूला हो गया। उसने भयंकर अट्टास किया लेकिन महावीर जरा भी विचलित नहीं हुए। वह यक्ष प्रलयकाल के तूफान की तरह हुंकार करके रौद्र नृत्य करने लगा। लेकिन महावीर फिर भी स्थिर रहे। उसे उन पर अत्यधिक रोष आया। वह उनको तरह–तरह से यातना देने लगा। कभी मदोन्मत्त हाथी की तरह पैरों से रौदता, कभी गेंद की तरह आकाश में उछालता, कभी बिच्छू की तरह जहरीले डंक मारता तो कभी शिकारी कुत्तों की तरह उनका मांस नोच डालता। लेकिन महावीर फिर भी स्थिर और अडिग रहे। आखिर उसकी धृष्टता दूर हुई। उसकी दृष्टता महावीर की साधुता से भिड़ कर, टकराकर निस्तेज हो गई। वह हतप्रभ हो गया तथा उसे अपने आप से घृणा हो गई। उसने प्रभु महावीर के समक्ष क्षमा मांगी। महावीर ने अभयदान दिया। प्रातःकाल जब ग्रामवासी आए तो वहाँ पर बड़ा शान्त वातावरण था। यक्ष श्रमण महावीर की उपासना में निमग्न था। पूरा गाँव हर्ष से श्रमण महावीर की विजय–गाथा गाने लगा।[5]

अहिंसा की अमृत वर्षा

श्रमण महावीर सुवर्ण बालुका नदी के पास कनकखल नामक आश्रम पाद से गुजर रहे थे। उन्होंने पीछे से आते हुए कुछ ग्वालों की भयाक्रान्त पुकार सुनी। उन्होंने कहा– ''देखो! आप रुक जायें, आगे न बढ़ें, इस रास्ते पर एक भयानक काला नाग रहता है, जिसने अपनी विष–ज्वाला से अगणित राहगीरों को भस्मसात कर डाला है। हजारों पशु–पक्षी व पेड़–पौधें उसकी विषाग्नि से जलकर राख हो गए हैं।'' महावीर दो क्षण रूक गए। उन्होंने अपना अभयसूचक हाथ ऊपर उठाया, जैसे संकेत दे रहे हों कि तुम घबराओं नहीं। गाँव वालों ने उन्हें पुनः समझाया पर महावीर धीर–गम्भीर गति से आगे बढ़ते गए। उस नाग की बांबी के पास एक प्राचीन देवालय था, वे वही पहुँचकर ध्यानमग्न हो गए।

जंगल में घूमता हुआ वह सर्प अपनी बांबी के पास पहुंचा तथा वहाँ देवालय में एक मनुष्य को निश्चल खड़ा देखकर आश्चर्यचकित हो गया। साथ ही उसे भयंकर क्रोध भी आया। उसने अपनी विषमयी तीव्र दृष्टि से महावीर की ओर देखा, अग्निपिण्ड से जैसे ज्वालाएँ निकलती है वैसे ही उसकी आँखें से तीव्र विषमय ज्वालाएँ निकलने लगीं। साधारण मनुष्य तो उनसे जलकर खाक हो जाता पर महावीर

पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने बार–बार उन पर प्रहार किया पर महावीर अविचलन ध्यान में निमग्न रहे। आखिर उसने एक तीव्र दंश उनके अंगूठे पर मारा। लेकिन यह भी निष्फल हो गया। उल्टे वहाँ से दूध की धारा बहने लगी।

महावीर का अब ध्यान पूर्ण हुआ। उन्होंने चण्डकौशिक को उद्बोधन देते हुए कहा– ''चंडकौशिक समझो! समझो! अब शान्त हो जाओ। अपना क्रोध शान्त करो।'' महावीर के अमृत–वचन सुनकर नागराज का क्रोध पानी पानी हो गया। वह विचारों की गहराई से उतरा तो उसे जाति स्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया। तीव्र क्रोध के कारण उसने पूर्व जन्मों में कितने–कितने कष्ट उठायें, वह उसे स्मरण हो आया। वह शान्त होकर बार–बार उनके चरणों में लिपटकर क्षमा मांगने लगा। प्रातःकाल गाँव वालों ने यह दृश्य देखा तो वे आश्चर्यचति हो उठे तथा प्रभु का गुणगान करने लगे।[6]

अहिंसा, अभय और मैत्री का एक ज्वलन्त उदाहरण है।

साधना की अग्निपरीक्षा – साधना का ग्यारहवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। श्रमण महावीर ने श्रावस्ती में वर्षावास किया। यहाँ पर ध्यान एवं योग की अनेक प्रक्रियाओं द्वारा उन्होंने साधना को और भी प्रखर बनाया। तीन तीन का उपवास करके श्रमण महावीर पेढ़ाल उद्यान में कायोत्सर्ग मुद्रा तथा उत्कृष्ट ध्यान–प्रतिमा में लीन थे। उनके तन–मन व प्राण अकम्प तथा स्थिर थे। उसी समय एक देव संगम उनके अग्निपरीक्षा लेने का पहुँचा। एक ही रात्रि में उस देव ने श्रमण महावीर को इतनी यातनाएँ दी; इतने प्राणघातक कष्ट दिये कि वज्र–हृदय भी दहल जाये; किन्तु परमयोगी महावीर का एक रोम भी प्रकम्पित नहीं हुआ।

इस प्रकार के बीस घोर उपसर्ग महावीर पर आये पर संकल्प के धनी महावीर अपनी स्थिति से, अपनी नासाग्र दृष्टि से तिल भर भी डिगे नहीं। आखिर दुष्ट संगम का अहंकार चूर हुआ और उसने महावीर से क्षमा मांगी। प्रातः काल महावीर को ध्यान साधना पूर्ण हुई और वे प्रसन्न मन से आगे विहार को बढ़े।[7]

संदर्भ ग्रन्थों सूची :

1. आवश्यक निर्युक्ति– 240
2. आचारांग – 1/9
3. आचारांग – 1/6
4. आचारांग – 1/19
5. त्रिपिटक 10/3
6. त्रिपिटक 10/3
7. आवश्यक निर्युक्ति, पृ. 245